बिहार लोक सेवा आयोग एवं अन्य आदि

बनाम

डॉ. शिव जतन ठाकुर एवं अन्य आदि

22 जुलाई, 1994

[के. रामास्वामी तथा एन. वेंकटचला, न्यायमूर्ति गण]

भारत का संविधान/बिहार लोक सेवा आयोग (सेवा शर्तें) विनियम, 1960 :

अनुच्छेद 226, 316 से 322/विनियम 2, 3, 4 तथा 17—बिहार लोक सेवा आयोग—सदस्य—नियुक्ति—सेवा की शर्तें—संरक्षण—अध्यक्ष के समकक्ष सुविधाओं एवं सुख-सुविधाओं का दावा करते हुए सदस्य द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका।—नियुक्त सदस्य समान प्रकार की सुविधाओं एवं सुख-सुविधाओं का हकदार नहीं—अध्यक्ष के पास सदस्य को प्रशासनिक कार्य संचालन हेतु प्रदान की गई सुविधाएँ वापस लेने की शक्ति—ऐसी सुविधाओं की वापसी को सदस्य की सेवा शर्तों में परिवर्तन नहीं माना जा सकता।

बिहार लोक सेवा आयोग—सदस्य द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में आयोग द्वारा संपादित कार्यों को चुनौती—उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश प्रदान करना—उच्च न्यायालय में निहित विवेकाधीन उपचार का उपयोग सदस्य को आयोग द्वारा एक निकाय के रूप में किए गए कार्यों की वैधता पर प्रश्न उठाने की अनुमति देने के लिए नहीं किया जा सकता—ऐसे कार्यों में सदस्य को पक्षकार माना जाना चाहिए—उच्च न्यायालय की विनिर्दिष्ट आदेश क्षेत्राधिकार का प्रयोग आयोग के सामान्य कार्यों में हस्तक्षेप करने हेतु अंतरिम आदेश पारित करने के लिए उपलब्ध नहीं है।

स्थानांतरित वाद संख्या 2/93 में याचिकाकर्ता को बिहार लोक सेवा आयोग (बीपीएससी) का सदस्य नियुक्त किया गया था। बीपीएससी की सदस्यता से हटाए जाने की मांग करते हुए उच्च न्यायालय में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की गई थी, इस आधार पर कि याचिकाकर्ता को हुई दृष्टिहीनता की कमजोरी ने उसे इस पद के लिए अयोग्य बना दिया है। उच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को खारिज कर दिया, परंतु यह अवलोकन किया कि जब तक याचिकाकर्ता बीपीएससी का सदस्य है, उसे अन्य किसी भी

सदस्य की भांति सभी सुविधाएँ और सुख-सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए और ऐसे मामलों में अध्यक्ष और साधारण सदस्य के बीच कोई अंतर नहीं होना चाहिए। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अध्यक्ष और बीपीएससी के सचिव के विरुद्ध अवमानना याचिका दायर की, यह आरोप लगाते हुए कि उन्होंने उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार उसे सुविधाएं और सुख-सुविधाएं प्रदान करने में विफलता की। इस बीच, याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (सीडब्ल्यूजेसी संख्या 1898/92) भी दायर की, जिसमें प्रार्थना की गई कि (क) उन्हें अध्यक्ष के समान एक सुसज्जित पृथक कक्ष का अधिकार है (ऐसा कक्ष उन्हें पहले ही प्रदान किया जा चुका है), क्योंकि अध्यक्ष भी संविधान के अनुच्छेद 316 के खंड (1), (2) और (3) के परंतुक और अनुच्छेद 318 के परंतुक के साथ-साथ बिहार लोक सेवा आयोग (सेवा की शर्तें) विनियम, 1960 के विनियम 2(घ) के तहत बीपीएससी के सदस्य हैं; (ख) संविधान के अनुच्छेद 318 के तहत लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा शर्तों के संरक्षण को देखते हुए, उनकी नियुक्ति के बाद उन्हें दी गई सुविधाओं से उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता था; (ग) राज्य सरकार को निर्देश जारी किया जाए कि वह अध्यक्ष के खिलाफ कथित चूक के लिए दंडात्मक कार्रवाई करने हेतु भारत के राष्ट्रपति को सूचित करे। और (घ) याचिकाकर्ता को सुविधाएं प्रदान करने के संबंध में पिछली विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्देशों की जानबूझकर अवज्ञा करने के लिए उत्तरदाता संख्या 3 और 4 को उचित दंड देने के आदेश पारित करना।

उच्च न्यायालय ने 27.8.92, 1.9.92, 7.9.92, 8.9.92 तथा 16.9.92 को क्रमशः त्वरित रूप से पाँच अंतरिम आदेश पारित किए : (i) बीपीएससी को यह निर्देश देना कि याचिकाकर्ता द्वारा बीपीएससी की बैठक कैसे आयोजित की जानी चाहिए, इस संबंध में उठाए गए मुकदमे के बिना निर्णय लेने से परहेज किया जाए; (ii) याचिकाकर्ता को बीपीएससी के सभी सदस्यों, जिसमें अध्यक्ष भी शामिल हैं, को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में पक्षकार-उत्तरदाता के रूप में सम्मिलित करने की अनुमति देना; (iii) अध्यक्ष को सभी प्रासंगिक अभिलेखों सहित न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश देना तथा उसके उपस्थित न होने की स्थिति में उसके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने का आदेश देना; (iv) बीपीएससी को याचिकाकर्ता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में बीपीएससी द्वारा अपनाए गए रुख के संबंध में निर्णय लेने का निर्देश देना; तथा (v) उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को बीपीएससी की बैठक की अध्यक्षता करने हेतु नियुक्त करना ताकि यह निर्णय किया जा सके कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में अध्यक्ष द्वारा दायर हलफनामों को बीपीएससी की ओर

से दायर माना जा सकता है या नहीं, साथ ही अध्यक्ष और बीपीएससी के सदस्य को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के निस्तारण तक अपना वेतन न निकालने का निर्देश देना। इन अंतरिम आदेशों को बीपीएससी द्वारा दायर विशेष अनुमति अपीलों में चुनौती दी गई। इस न्यायालय ने, अंतरिम आदेशों के संचालन को स्थगित करते हुए, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (सीडब्ल्यूजेसी संख्या 1898/92) को इस न्यायालय में निस्तारण हेतु वापस ले लिया। उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को, इस न्यायालय में स्थानांतरण पर, स्थानांतरित वाद संख्या 2/93 के रूप में पंजीकृत किया गया।

स्थानांतरित वाद (सीडब्ल्यूजेसी 1898/92) तथा अपीलों को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1. यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता, बिहार लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में, बीपीएससी के अध्यक्ष को प्राप्त समान प्रकार की सुविधाएं और सुख-सुविधाएँ पाने का अधिकारी है। यद्यपि सदस्य की नियुक्ति, पदावधि, हटाए जाने और निलंबन से संबंधित मामलों में, सार्वजनिक सेवा आयोग के कार्यों के निष्पादन तथा कर्तव्यों के निर्वहन के संबंध में, जैसा कि अनुच्छेद 316 से 321 में प्रावधानित है, संविधान के अंतर्गत अध्यक्ष और सदस्य समान स्तर पर हैं और समान प्रतिभागी हैं, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके-अपने पदों के संदर्भ में उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के संबंध में दोनों के पदों के बीच कोई अंतर नहीं है। [110-डी से जी]

1.2. लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की भांति, संविधान के अंतर्गत लोक सेवा आयोग के प्रशासन से संबंधित किए जाने वाले कर्तव्यों के भंडार के रूप में नियुक्त होते हैं। उन्हें ऐसे प्रशासनिक कर्तव्यों के निर्वहन का दायित्व सौंपा जाता है, जो इस कारण से है कि ऐसे उच्च संवैधानिक पदाधिकारी से इन कर्तव्यों का न्यायपूर्ण और निष्पक्ष रूप से निर्वहन अपेक्षित किया जा सकता है। संविधान के प्रावधानों तथा बिहार लोक सेवा आयोग (सेवा शर्तें) विनियम, 1960 की योजना के अंतर्गत, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष की अध्यक्ष के रूप में अपने पद के प्रशासनिक कर्तव्यों के निर्वहन में विशिष्ट भूमिका होती है, जबकि कोई सदस्य उस संबंध में कोई भूमिका नहीं निभा सकता, जब तक कि अन्यथा अपेक्षित न हो। [111-सी से ई]

2.1. संविधान के अनुच्छेद 318 के अंतर्गत बनाए गए विनियम, जो लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवा शर्तों से संबंधित हैं, किसी सदस्य की नियुक्ति के बाद उसकी

सेवा शर्तों को उसके प्रतिकूल रूप से परिवर्तित नहीं कर सकते। लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य, जैसा कि अध्यक्ष के मामले में भी हो सकता है, अपनी नियुक्ति के बाद विनियमों द्वारा उसकी सेवा की किसी भी शर्त को उसके प्रतिकूल रूप से परिवर्तित किए जाने पर कोई शिकायत कर सकता है और उस संबंध में न्यायालयों से उपयुक्त प्रतिकार प्राप्त कर सकता है। [111-एफ, जी]

2.2. जब लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष द्वारा किसी सदस्य की नियुक्ति के पश्चात आयोग के प्रशासन का निर्वहन करते हुए उसे कुछ सुविधाएँ अथवा सुख-सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, तो यदि प्रशासनिक आवश्यकताएँ इसकी मांग करें, अध्यक्ष उन सुविधाओं अथवा सुख-सुविधाओं में से किसी को भी वापस ले सकता है। ऐसी सुविधाओं अथवा सुख-सुविधाओं की वापसी को, किसी भी स्थिति में, अनुच्छेद 318 के उपबंध के अधीन परिकल्पित लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा शर्तों में परिवर्तन नहीं माना जा सकता। [111-एच, 112-ए, बी]

2.3. बीपीएससी के सदस्यों को उनके कार्यालय संबंधी कार्य हेतु प्रदान की जाने वाली आवासीय सुविधाएँ, उसके कार्य संचालन के लिए उपलब्ध आवास पर आवश्यक रूप से निर्भर करनी चाहिए। तथापि, लोक सेवा आयोग जैसी संस्था को राज्य सरकार द्वारा, आवश्यकता के कारण, अपने सदस्यों के लिए आवश्यक आवास या अन्य सुविधाओं से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। [112-एफ, जी]

2.4. जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई प्रतिपूरक भत्ता का संबंध है, याचिकाकर्ता के लिए यह खुला है कि वह विनियम 17 के अंतर्गत उसी की स्वीकृति का अनुरोध करे, जिसे यदि माँगा गया, तो गुण-दोष के आधार पर विचार कर निर्णय किया जाएगा। [112-एच]

3. लोक सेवा आयोग का कोई भी सदस्य, जब वह उसका सदस्य था, लोक सेवा आयोग द्वारा एक निकाय के रूप में किए गए कार्यों या निर्वहित कर्तव्यों की वैधता या शुद्धता पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि सरल कारण यह है कि ऐसा सदस्य उस कार्य या कर्तव्य का, जिसे लोक सेवा आयोग को एक निकाय या संस्था के रूप में करना या निर्वाह करना आवश्यक है, पक्षकार माना जाना चाहिए, भले ही वह असहमत सदस्य रहा हो या अल्पमत में रहा हो या ऐसा सदस्य रहा हो जिसने ऐसे कार्य के निष्पादन या कर्तव्य के निर्वहन में भाग लेने से परहेज किया हो। अतः संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत

उच्च न्यायालय में निहित विवेकाधीन उपचार का उपयोग लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को, स्थापित प्रक्रियाओं के अनुसार लोक सेवा आयोग द्वारा एक निकाय या संस्था के रूप में किए गए कार्यों या निर्वहित कर्तव्यों की शुद्धता या वैधता पर प्रश्न उठाने की अनुमति देने के लिए नहीं किया जा सकता। [109-बी से डी]

4. अध्यक्ष और बीपीएससी के सचिव के विरुद्ध विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में किए गए वही आरोपों के संदर्भ में याचिकाकर्ता द्वारा दायर अवमानना याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज किए जाने के कारण, वही अनुतोष पुनः प्राप्त करने का प्रश्न न तो उत्पन्न होता है और न ही विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उसे उठाने की अनुमति दी जा सकती है। [109-ई]

5.1 संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को संविधान के तहत प्रदत्त अधिकार के प्रवर्तन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने का अधिकार देता है, जिसमें उसमें सूचीबद्ध आदेश भी शामिल हैं। लेकिन ऐसा विवेकाधिकार, न्यायिक विवेकाधिकार होने के कारण, सुस्थापित न्यायिक मानदंडों के आधार पर प्रयोग किया जाना चाहिए, और उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश जारी करने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है, जो किसी भी तरह से विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में मांगी गई मुख्य राहत प्रदान करने में न्यायालय की सहायता नहीं कर सकते। [115-ई-एफ]

5.2. उच्च न्यायालय की विनिर्दिष्ट आदेश क्षेत्राधिकार का उपयोग ऐसे अंतरिम आदेश पारित करने के लिए नहीं किया जा सकता था, जो बीपीएससी के सामान्य कार्य संचालन में हस्तक्षेप करते हों। अंतरिम आदेश यह दर्शाते हैं कि उच्च न्यायालय ने बीपीएससी की बैठकों के संचालन हेतु अपने स्वयं के अध्यक्ष की नियुक्ति करके, बीपीएससी के कार्यों के निर्वहन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने का प्रयास किया। [114-एच, 115-बी]

5.3. उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश, *यथास्थिति* बनाए रखने के लिए नहीं थे और न ही ऐसे आदेश थे जिनकी समीक्षा पर यह कहा जा सके कि अंततः दी जाने वाली राहत उनके बिना अनुपयुक्त या पूर्णतः अस्थिर हो जाती। ऐसे अंतरिम आदेश, कम से कम इतना अवश्य करते हैं कि उनके क्रियान्वयन से अध्यक्ष और उसके सदस्यों को आम जनता की दृष्टि में उपहास का पात्र बना दिया गया और बीपीएससी जैसी संवैधानिक संस्था को उपहास का विषय बना दिया गया। [115-जी, एच]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1994 की दीवानी अपील संख्या 4878–82

पटना उच्च न्यायालय द्वारा सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898/1992 में दिनांक 27.8.92, 1.9.92, 7.9.92, 8.9.92 एवं 16.9.92 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से : एल. आर. सिंह।

उत्तरदाता पक्ष की ओर से : एस. बी. उपाध्याय, गोपाल सिंह, बी. बी. सिंह एवं एस. के. भट्टाचार्य।

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति वेंकटचला** द्वारा प्रस्तुत किया गया —

एस.एल.पी. (सी) संख्या 12593–97 सन् 1992, बिहार लोक सेवा आयोग—बीपीएससी तथा उसके अध्यक्ष द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाएँ हैं। डॉ. राम आश्रय यादव, जो विनिर्दिष्ट आदेश याचिका, सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898 सन् 1992 में उत्तरदाता-4 तथा अध्यक्ष थे, तथा डॉ. शिव जतन ठाकुर (डॉ. ठाकुर), पटना उच्च न्यायालय की न्यायिक पीठ के समक्ष, उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में पारित अंतरिम आदेशों को चुनौती देते हुए उत्तरदाता-1 एवं उत्तरदाता-3 हैं। स्थानांतरित वाद संख्या 2 सन् 1993 वही विनिर्दिष्ट आदेश याचिका सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898 सन् 1992 है, जो उच्च न्यायालय के समक्ष थी, जिसे उक्त एस.एल.पी. में इस संबंध में किए गए आदेश के अनुसार 18 नवम्बर, 1992 को इस न्यायालय में वापस ले लिया गया। उक्त एस.एल.पी. तथा उक्त स्थानांतरित वाद को एक साथ सुनवाई के लिए रखा गया। दोनों पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के उपरांत, हम इस सामान्य निर्णय द्वारा उनका निस्तारण कर रहे हैं।

विशेष अनुमति याचिकाओं तथा स्थानांतरित वाद की सही सुनवाई के लिए तथ्यात्मक पृष्ठभूमि की समुचित समझ आवश्यक होने के कारण, उनके उचित निस्तारण हेतु उस पृष्ठभूमि का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

डॉ. ठाकुर को 4 मार्च, 1991 को बीपीएससी का सदस्य नियुक्त किया गया था। पटना उच्च न्यायालय में एक अधिवक्ता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका, सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 446 सन् 1992 में, बीपीएससी की सदस्यता से डॉ. ठाकुर को हटाने हेतु *अधिकार पृच्छा* की विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की मांग इस आधार पर की गई थी कि उन्हें हुई दृष्टिहीनता की विकलांगता ने उन्हें बीपीएससी के सदस्य के रूप में बने रहने के अयोग्य बना

दिया है। उच्च न्यायालय ने, निस्संदेह, 16 जनवरी, 1992 को दिए गए अपने निर्णय द्वारा उस विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को खारिज कर दिया, किंतु उसमें यह अवलोकन किया : "डॉ. ठाकुर, जब तक उन्हें विधि के अनुसार बीपीएससी की सदस्यता से नहीं हटाया जाता, बीपीएससी तथा उसके अध्यक्ष और अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा अन्य किसी भी सदस्य की भांति सभी सुविधाएँ और सुख-सुविधाएँ पाने के हकदार हैं और ऐसे मामलों में अध्यक्ष और डॉ. ठाकुर जैसे साधारण सदस्य के बीच कोई अंतर नहीं होना चाहिए, जो अध्यक्ष द्वारा उपभोग की जाने वाली सभी सुविधाओं के भी हकदार होंगे।" उच्च न्यायालय की यह टिप्पणी, प्रतीत होता है, डॉ. ठाकुर को अध्यक्ष तथा बीपीएससी के सचिव के विरुद्ध अवमानना याचिका, एम.जे.सी. संख्या 324 सन् 1992 दायर करने के लिए प्रेरित कर गई, यह आरोप लगाते हुए कि उन्होंने उक्त टिप्पणी में निहित निर्देशों का जानबूझकर उल्लंघन और अवहेलना की है, तथा उसी में उनके विरुद्ध अवमानना की कार्रवाई करने का अनुरोध किया गया।

किन्तु, जब उक्त अवमानना याचिका खारिज होने वाली थी, तब डॉ. ठाकुर ने उसी उच्च न्यायालय में एक स्वतंत्र विनिर्दिष्ट आदेश याचिका, अर्थात् सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898 सन् 1992 दायर की, जिसमें (i) बीपीएससी के अध्यक्ष, बिहार राज्य तथा बिहार के राज्यपाल को यह निर्देश देने की मांग की गई कि उन्हें वे सुविधाएँ बहाल की जाएँ, जिनका, उनके अनुसार, वे 1 अक्टूबर, 1991 तक उपभोग कर रहे थे; तथा (ii) बिहार सरकार और बिहार के राज्यपाल को यह सूचित करने का निर्देश देने की मांग की गई कि बीपीएससी के अध्यक्ष द्वारा किए गए कार्यों और अध्यक्ष के रूप में निर्वहित कर्तव्यों का प्रतिवेदन भारत के राष्ट्रपति को भेजी जाए, ताकि राष्ट्रपति विधि के अनुसार उनके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई कर सकें। उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उन्होंने उच्च न्यायालय से यह भी प्रार्थना की कि बीपीएससी के अध्यक्ष और उसके सचिव को, सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 446 सन् 1992 में उच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय में की गई टिप्पणियों की कथित जानबूझकर अवहेलना के लिए दंडित किया जाए।

तथापि, उच्च न्यायालय ने, जिसने बाद में 21 मई, 1992 के अपने आदेश द्वारा डॉ. ठाकुर द्वारा दायर अवमानना याचिका को खारिज कर दिया था, उक्त आदेश में यह अवलोकन किया कि अवमानना याचिका को खारिज किया जाना, अन्य कार्यवाहियों में पक्षकारों के अधिकारों और दावों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।

उक्त अन्य कार्यवाही, जिसके संबंध में उच्च न्यायालय ने डॉ. ठाकुर की अवमानना याचिका को खारिज करते समय, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पक्षकारों के अधिकारों और दावों को सुरक्षित रखा था, वही उपर्युक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका, अर्थात् सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898 सन् 1992 थी, जिसमें उच्च न्यायालय ने डॉ. ठाकुर के एकमात्र प्रार्थना-पत्र पर, 27 अगस्त, 1992 से प्रारंभ करते हुए, कई क्रमिक अंतरिम आदेश पारित किए। 27 अगस्त, 1992 के अंतरिम आदेश द्वारा बीपीएससी को 29 अगस्त, 1992 को बैठक आयोजित करने तथा डॉ. ठाकुर द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के संबंध में बीपीएससी की ओर से मुकदमा कैसे संचालित किया जाना है, इस पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। दूसरा अंतरिम आदेश, 1 सितम्बर, 1992 को, उच्च न्यायालय द्वारा केवल दो दिन बाद पारित किया गया, जैसा कि उस आदेश से ही स्पष्ट है, इस आधार पर कि उस दिन बीपीएससी की ओर से न्यायालय में कोई उपस्थित नहीं हुआ था और न ही उच्च न्यायालय के 27 अगस्त, 1992 के पूर्व आदेश के अनुसार बीपीएससी द्वारा लिया गया कोई निर्णय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। उस आदेश से यह भी प्रकट होता है कि डॉ. ठाकुर को यह अनुमति दी गई कि वे अध्यक्ष के माध्यम से बीपीएससी सहित सभी सदस्यों को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उत्तरदाता के रूप में सम्मिलित करें। इसके पश्चात्, 7 सितम्बर, 1992 को उच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में तीसरा अंतरिम आदेश पारित किया गया, जिसमें कहा गया :

> "यह मामला कल प्रस्तुत होगा, जब बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को इस विषय के संबंध में सभी प्रासंगिक अभिलेखों सहित न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है; अनुपस्थित रहने की स्थिति में उनके विरुद्ध गैर-जमानती गिरफ्तारी वारंट जारी किया जाएगा।
>
> यह दर्ज किया जाए कि अध्यक्ष की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है, सिवाय एक कनिष्ठ अधिवक्ता के, जिसने स्थगन का अनुरोध किया, और कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया।
>
> उसी शीर्षक के अंतर्गत कल उपस्थित हों।
>
> यह आदेश इस न्यायालय के निबंधक द्वारा आज ही अध्यक्ष को व्यक्तिगत रूप से संप्रेषित किया जाए।"

उक्त अंतरिम आदेश के तुरंत बाद, 8 सितम्बर, 1992 को चौथा अंतरिम आदेश पारित किया गया। उस अंतरिम आदेश द्वारा आयोग की एक बैठक आयोजित करने का निर्देश दिया गया, ताकि डॉ. ठाकुर द्वारा बीपीएससी के विरुद्ध लगाए गए विभिन्न आरोपों के संबंध में आयोग के विभिन्न सदस्यों के विचार ज्ञात किए जा सकें, तथा यह स्पष्ट किया गया कि अध्यक्ष के समक्ष उत्तर दर्ज करने के लिए प्रत्येक सदस्य को अपनी व्यक्तिगत राय अभिलेख पर रखने का अवसर उपलब्ध होगा। उस आदेश में आगे यह कहा गया :

> "...आयोग के किसी भी सदस्य के आग्रह पर, डॉ. ठाकुर तथा अध्यक्ष—दोनों को—आयोग के अन्य सदस्यों द्वारा कोई स्पष्टीकरण या स्पष्टिकरण प्रस्तुत करने के लिए बुलाया जा सकता है। तथापि, निर्णय आयोग की बैठक में लिया जाएगा, किंतु याचिकाकर्ता या अध्यक्ष को मतदान किए जाने के समय न तो मतदान का अधिकार होगा और न ही वे उपस्थित होने के हकदार होंगे।"

इसके पश्चात् 16 सितम्बर, 1992 को पाँचवाँ अंतरिम आदेश पारित किया गया। उस आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने पटना उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, माननीय श्री न्यायमूर्ति एल. पी. एन. सहाय को बीपीएससी की बैठक की अध्यक्षता करने हेतु नियुक्त किया, ताकि यह निर्णय किया जा सके कि अध्यक्ष द्वारा बीपीएससी की ओर से दायर किए गए हलफनामों को डॉ. ठाकुर द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के विरोध में आयोग की ओर से दायर माना जा सकता है या नहीं। सबसे बढ़कर, उच्च न्यायालय ने उस अंतरिम आदेश द्वारा यह निर्देश दिया कि उच्च न्यायालय में लंबित विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के दौरान न तो अध्यक्ष और न ही बीपीएससी के सदस्य अपने वेतन और भत्ते आहरित करेंगे।

जब उच्च न्यायालय के उक्त अंतरिम आदेशों को उपर्युक्त एस.एल.पी. में चुनौती दी गई, तो इस न्यायालय ने, उच्च न्यायालय में लंबित उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में पारित क्रमिक अंतरिम आदेशों के कारण उत्पन्न हुई अनुचित स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए, यह कहा कि न केवल उक्त अंतरिम आदेशों का संचालन, बल्कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में आगे की कार्यवाहियाँ भी, समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा पारित उपयुक्त आदेशों द्वारा स्थगित रहेंगी। इसके पश्चात्, पक्षकारों की सहमति से तथा भारत के महान्यायवादी के आग्रह पर, वह विनिर्दिष्ट आदेश याचिका, जिसमें उक्त अंतरिम आदेश पारित किए गए थे, उसमें निहित महत्वपूर्ण विधिक प्रश्नों के कारण, स्वयं इस न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के निस्तारण हेतु इस न्यायालय में वापस ले ली गई।

विशेष अनुमति याचिकाओं तथा स्थानांतरित वाद की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि, जैसा कि हमने ऊपर वर्णित किया है, होने के कारण, अब हम विशेष अनुमति याचिकाओं तथा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका—सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 1898 सन् 1992 (स्थानांतरित वाद)—पर विचार कर उनका निस्तारण कर सकते हैं।

डॉ. ठाकुर द्वारा, बीपीएससी के सदस्य के रूप में, उच्च न्यायालय के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट आदेश क्षेत्राधिकार का सहारा लेते हुए, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) में जो राहतें मांगी गई थीं, वे इस प्रकार थीं :

(क) उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश/निर्देश/आदेश जारी कर, 1 अक्टूबर, 1991 तक याचिकाकर्ता द्वारा उपभोग की जा रही सभी सुविधाओं को पुनः प्रदान/बहाल करने के लिए, जिनमें *अन्य बातों के साथ-साथ,* निम्नलिखित शामिल थे—

(i) प्रशासनिक भवन के कक्ष संख्या 2 में स्थित सुसज्जित अधिकारी-कक्ष-सह-आवास, जिसमें टेलीफोन, कूलर, एक अंग्रेज़ी टाइपराइटर, दो स्टील अलमारियाँ, पी.ए. के लिए एक एंटी-रूम तथा कक्ष से संलग्न शौचालय शामिल था।

(ii) रीडर, श्री आर. पी. वर्मा की सेवाएँ, जिन्हें बिहार लोक सेवा आयोग विनियमों के उप-विनियम 2(बी) के अंतर्गत नियुक्त किया गया था (आगे "विनियम" कहा गया), जिन्हें शिक्षा विभाग के पत्र संख्या जे.एम./07/83 दिनांक 30.4.1985 तथा वित्त विभाग के परिपत्र संख्या 3/ए-3-2/91/3985/एफ/92 दिनांक 25.7.1991 के साथ पठित किया जाए।

(iii) विश्वासपात्र पी.ए., श्री एस. एम. दास तथा सचिवीय निर्देशों के नियम 1(iv)(जी) (5) एवं 2.8(बी) की भावना के अनुसार क्रमशः अपनी पसंद के आदेशली श्री अभिनन्दन प्रसाद बदल की सेवाएँ, जिन्हें याचिकाकर्ता के साथ संलग्न किया गया था।

(ख) उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश/निर्देश/आदेश जारी कर, उत्तरदाता संख्या 1 एवं 2 को यह निर्देश देना कि वे उत्तरदाता संख्या 3 द्वारा किए गए दुराचार अथवा चूक/कमीशन का प्रतिवेदन भारत के महामहिम राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद 317(1) एवं (2) के अंतर्गत उपयुक्त कार्रवाई हेतु प्रस्तुत करें, क्योंकि उसने संविधान के अनुच्छेद 14, 318 एवं 320(3) का उल्लंघन किया है अथवा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 176, 186, 189 एवं 504 का

अतिक्रमण किया है, जो कि उसके आधिकारिक पद के गंभीर दुरुपयोग से संबंधित है।

(ग) उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश/निर्देश/आदेश जारी कर, उत्तरदाता संख्या 1 को यह निर्देश देना कि वह उत्तरदाता संख्या 3 के विरुद्ध उसकी जानबूझकर की गई कार्यवाही या उत्तरदाता संख्या 3 द्वारा पारित अवैध आदेशों के कारण उत्पन्न चूक या कमीशन के संबंध में उपयुक्त कार्रवाई करे।

(घ) उपयुक्त दंडादेश पारित करने हेतु उत्तरदाता संख्या 3 तथा उत्तरदाता संख्या 4 के विरुद्ध, उनके द्वारा इस न्यायालय के सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 446/92 में दिए गए अवलोकन के माध्यम से पारित निर्देश की जानबूझकर अवहेलना के लिए, आदेश पारित करना; जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता को यह अधिकार दिया गया था और दिया जाना चाहिए था कि उसे आयोग, उसके अध्यक्ष तथा अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा उन मामलों में अन्य किसी भी सदस्य की भाँति सभी सुविधाएँ प्रदान की जाएँ, जिनमें अध्यक्ष और साधारण सदस्यों के बीच कोई अंतर नहीं है, और इस संदर्भ में अध्यक्ष द्वारा उपभोग की जाने वाली सभी सुविधाओं का उपभोग करने का भी अधिकार होगा।

डॉ. ठाकुर द्वारा अपनी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में मांगी गई उपर्युक्त राहतें, चूँकि बीपीएससी की सदस्यता पर आधारित हैं, अतः यहाँ स्वयं यह ध्यान देना उपयुक्त होगा कि भारत के संविधान में निहित लोक सेवा आयोगों से संबंधित प्रावधानों तथा बिहार लोक सेवा आयोग (सेवा शर्तें) विनियम, 1960 (आगे संक्षेप में "विनियम" कहा गया है) में निहित प्रावधानों को देखा जाए, जो बीपीएससी को उसकी संस्थागत प्रकृति प्रदान करते हैं; बीपीएससी द्वारा, अध्यक्ष एवं सदस्यों से युक्त एक निकाय के रूप में, कुछ विषयों के संबंध में किए जाने वाले कार्यों एवं निर्वहित किए जाने वाले कर्तव्यों को निर्धारित करते हैं; बीपीएससी के प्रशासनिक कार्य, जिन्हें अध्यक्ष द्वारा संपादित किया जाना है; अध्यक्ष तथा बीपीएससी के सदस्यों के रूप में नियुक्त होने की पात्रता; उनके पदों की अवधि; अध्यक्ष एवं सदस्यों के अधिकार और विशेषाधिकार; उनकी सेवा शर्तें; बीपीएससी के वित्त; तथा बीपीएससी पर विधानमंडल का नियंत्रण।

संविधान के भाग XIV के अध्याय II में लोक सेवा आयोगों से संबंधित प्रावधान निहित हैं। उस अध्याय का अनुच्छेद 315 संघ तथा राज्य के लिए लोक सेवा आयोगों की स्थापना से संबंधित है। उसी अध्याय का अनुच्छेद 316, जो लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति तथा पदावधि से संबंधित है, यह प्रावधान करता है कि राज्य लोक

सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाएगी, बशर्ते कि नियुक्त व्यक्तियों द्वारा उस अनुच्छेद के उपबंध में निर्दिष्ट पात्रता मानदंडों को पूरा किया जाए। अनुच्छेद 316(1-ए) विशेष रूप से आयोग के अध्यक्ष के पद से संबंधित है और इस प्रकार कहता है :

> "यदि आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाए, या किसी कारणवश अध्यक्ष अपने पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाए, तो वे कर्तव्य, जब तक कि उपखंड (i) के अंतर्गत नियुक्त कोई व्यक्ति उस रिक्त पद पर प्रवेश कर अपने कर्तव्यों का निर्वहन आरंभ न कर दे, अथवा जैसा भी मामला हो, जब तक अध्यक्ष अपने कर्तव्यों का पुनः निर्वहन प्रारंभ न कर दे, तब तक आयोग के अन्य सदस्यों में से ऐसे किसी एक द्वारा, जिसे संघ आयोग या संयुक्त आयोग के मामले में राष्ट्रपति तथा राज्य आयोग के मामले में राज्यपाल इस उद्देश्य के लिए नियुक्त करे, द्वारा संपादित किए जाएँगे।"

अनुच्छेद 316(2) में, जहाँ लोक सेवा आयोग के सदस्य के पद की अवधि निर्धारित की गई है, उसके उपबंध में यह कहा गया है कि त्यागपत्र देने या पद से हटाए जाने पर उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। अनुच्छेद 316(3) तत्पश्चात ऐसे सदस्य को उस पद पर पुनर्नियुक्ति के लिए अयोग्य बनाता है। अनुच्छेद 317(1) में यह प्रावधान किया गया है कि उपखंड (3) के अधीन रहते हुए, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा, सर्वोच्च न्यायालय के संदर्भ पर, उसके द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, अनुच्छेद 145 के अंतर्गत, केवल दुराचार के आधार पर ही पद से हटाया जा सकता है; और यदि ऐसी प्रतिवेदन में यह पाया जाए कि अध्यक्ष या अन्य सदस्य, जैसा भी मामला हो, ऐसे किसी आधार पर हटाए जाने योग्य है, तो उसे हटाया जाएगा। उक्त अनुच्छेद का उपखंड (2) संघ आयोग या संयुक्त आयोग के मामले में राष्ट्रपति को तथा राज्य आयोग के मामले में राज्यपाल को यह अधिकार देता है कि वे उपखंड (1) के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को संदर्भ भेजे जाने की स्थिति में, सर्वोच्च न्यायालय का प्रतिवेदन प्राप्त होने तक अध्यक्ष या आयोग के किसी अन्य सदस्य को पद से निलंबित कर सकें। किंतु उपखंड (3) राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि वह अध्यक्ष या लोक सेवा आयोग के किसी अन्य सदस्य को, जैसा भी मामला हो, पद से हटा सके, यदि वह दिवालिया घोषित हो जाए; या अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन रोजगार में संलग्न हो; या राष्ट्रपति की राय में, मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण पद पर बने रहना अक्षम हो। उक्त अनुच्छेद का उपखंड (4) यह कहता है

कि उपखंड (1) के अंतर्गत अध्यक्ष या लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य दुराचार का दोषी माना जाएगा।

इसके पश्चात् उसी अध्याय में पाया जाने वाला अनुच्छेद 318 आता है, जो राष्ट्रपति या, जैसा भी मामला हो, राज्यपाल को विनियमों के माध्यम से यह अधिकार प्रदान करता है —

(क) आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा शर्तों का निर्धारण करने का; तथा

(ख) आयोग के कर्मचारियों की संख्या और उनकी सेवा शर्तों के संबंध में प्रावधान करने का।

परंतु उक्त अनुच्छेद का उपबंध, लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य की सेवा शर्तों की रक्षा करता है, यह कहते हुए कि नियुक्ति के बाद किसी सदस्य की सेवा शर्तों को उसके प्रतिकूल रूप से परिवर्तित नहीं किया जाएगा।

हालाँकि, उसी में आने वाला अनुच्छेद 319 यह निषेध करता है कि आयोग के अध्यक्ष और सदस्य, अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पद पर बने रहने के बाद या पद से हटने के पश्चात, किसी सरकारी पद को धारण करें।

अनुच्छेद 320 के संदर्भ में, यह लोक सेवा आयोगों के कार्यों से संबंधित है। इसका उपखंड (1) यह उपबंध करता है कि संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्य लोक सेवा आयोगों का यह कर्तव्य होगा कि वे क्रमशः संघ की सेवाओं तथा राज्य की सेवाओं में नियुक्तियों हेतु परीक्षाएँ संचालित करें। उपखंड (2) उन परिस्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा निर्वहित किए जाने वाले कर्तव्यों का उल्लेख करता है। उपखंड (3) संघ लोक सेवा आयोग या, जैसा भी मामला हो, राज्य लोक सेवा आयोग के उस कर्तव्य का उल्लेख करता है कि वे उन विषयों पर, जिन पर उनसे परामर्श किया जाना आवश्यक है या जिन पर उनसे परामर्श के लिए संदर्भ भेजा गया है, सलाह दें। अनुच्छेद 321 संसद तथा राज्य की विधायिका को यह अधिकार देता है कि वे विधि द्वारा, संबंधित आयोगों द्वारा संघ या राज्य की सेवाओं के संबंध में अतिरिक्त कार्यों के निर्वहन का प्रावधान करें, और किसी स्थानीय प्राधिकरण या विधि द्वारा गठित किसी अन्य निकाय के सेवाओं के संबंध में भी प्रावधान करें।

अनुच्छेद 322 यह प्रावधान करता है कि संघ या राज्य लोक सेवा आयोगों के व्यय,

जिनमें सदस्यों तथा आयोग के कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और पेंशन शामिल हैं, संघ या, जैसा भी मामला हो, राज्य की संचित निधि पर आरोपित होंगे। उक्त अनुच्छेद का उपखंड (1) यह दायित्व संघ पर आरोपित करता है कि वह आयोग द्वारा किए गए कार्यों पर राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करे और ऐसे प्रतिवेदन की प्राप्ति पर राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन की एक प्रति, साथ ही एक स्मरण-पत्र सहित, जिसमें उन मामलों के संबंध में स्पष्टीकरण दिया गया हो जिनमें आयोग की सलाह स्वीकार नहीं की गई, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष प्रस्तुत कराए। इसी प्रकार, राज्यपाल को भी यह दायित्व सौंपा गया है कि वह प्रतिवेदन की एक प्रति, स्मरण-पत्र सहित, राज्य की विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत कराए।

अब अनुच्छेद 318 के अंतर्गत बनाए गए विनियमों की ओर आते हैं। संविधान के भाग I में प्रारंभिक प्रावधान निहित हैं; भाग II में आयोग की संरचना तथा सदस्यों के वेतन से संबंधित प्रावधान हैं; भाग III में सदस्यों की सेवा शर्तों से संबंधित प्रावधान हैं; तथा भाग IV में आयोग के कर्मचारियों से संबंधित प्रावधान हैं। विनियमों के भाग I के विनियम 2 के खंड (ख) तथा खंड (घ) में "प्रतिपूरक भत्ता" और "सदस्य" की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

> "(ख) 'प्रतिपूरक भत्ता' से अभिप्राय वह भत्ता है जो व्यक्तिगत व्यय की प्रतिपूर्ति या विशेष परिस्थितियों में कर्तव्य के निर्वहन के कारण आवश्यक हुए सुविधाओं या निजी व्यवसाय के नुकसान के प्रतिफल के रूप में प्रदान किया जाता है। इसमें यात्रा भत्ता शामिल है, किंतु इसमें समुद्र द्वारा या भारत के बाहर किसी स्थान तक निःशुल्क यात्रा का अनुदान शामिल नहीं है।"
>
> "(घ) 'सदस्य' से अभिप्राय आयोग का सदस्य है और इसमें अध्यक्ष भी सम्मिलित है।"

विनियमों के भाग II में, विनियम 3(क) यह घोषित करता है कि आयोग में एक अध्यक्ष और 10 अन्य सदस्य होंगे, जबकि विनियम 4 अध्यक्ष के लिए उच्चतर मासिक वेतन तथा प्रत्येक सदस्य के लिए निम्नतर मासिक वेतन का प्रावधान करता है। विनियमों के भाग III में, जो सदस्यों की सेवा शर्तों से संबंधित है, विनियम 5 ए से 7 तक अध्यक्ष और आयोग के सदस्यों की अवकाश से संबंधित विषयों का निपटान करते हैं। विनियम 8 यह कहता है कि "जब अध्यक्ष अवकाश पर हो या अन्यथा अनुपस्थित हो, तो सबसे वरिष्ठ सदस्य अध्यक्ष के प्रशासनिक कर्तव्यों का वर्तमान प्रभार संभाल सकता है और ऐसे काल के

दौरान उसे प्रति माह ₹200 का विशेष वेतन दिया जाएगा।" इसके बाद विनियम 9, 10, 11, 12, 13, 14 तथा 15 अध्यक्ष और आयोग के सदस्यों को देय पेंशन से संबंधित हैं। विनियम 16 अध्यक्ष और सदस्यों के यात्रा एवं ठहराव भत्तों से संबंधित है। विनियम 17 सरकार को विशेष प्रतिपूरक भत्ता प्रदान करने का अधिकार देता है, जैसा कि उसके द्वारा निर्धारित किया जाए। विनियम 18 अखिल भारतीय सेवा अधिकारियों और उनके परिवारों को स्वीकार्य चिकित्सीय सुविधाओं को बीपीएससी के अध्यक्ष और सदस्यों तथा उनके परिवारों पर लागू करता है। विनियम 19 यह कहता है कि अध्यक्ष और आयोग के सदस्य, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, किसी भी कैलेंडर वर्ष में तीन माह से अधिक न होने की अवधि के लिए, अपने व्यय पर रांची में अवकाश ले सकते हैं :

(क) ऐसा अवकाश निरंतर होगा; और

(ख) अध्यक्ष और अन्य सदस्य सरकारी व्यय पर एक आशुलिपिक तथा दो चतुर्थ श्रेणी सेवक रख सकते हैं।

विनियम 20 सदस्य के सामान्य भविष्य निधि की सदस्यता लेने के अधिकार से संबंधित है। विनियम 21 आवास से संबंधित है, जिसमें यह कहा गया है कि यदि किसी सदस्य को सरकार के स्वामित्व या पट्टे पर ली गई आवासीय सुविधा आवंटित की जाती है, तो उसका उस आवास में निवास भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी पर लागू नियमों के अधीन होगा; बशर्ते कि यदि वह आवास विशेष रूप से किसी सदस्य के लिए निर्मित हो, तो सदस्य को उस आवास का मानक किराया या उसके मासिक पारिश्रमिक का 10 प्रतिशत, जो भी कम हो, भुगतान करना होगा, चाहे वह उस आवास में निवास करे या न करे।

विनियम 21ए सदस्य को, तुलनीय पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले सरकारी सेवकों पर लागू उपयुक्त नियमों के अनुसार, गृह-निर्माण अग्रिम तथा मोटर कार क्रय अग्रिम प्राप्त करने का अधिकार देता है।

विनियमों का भाग IV आयोग के कर्मचारियों से संबंधित विनियमों को समाहित करता है, जिन्हें आयोग से परामर्श के पश्चात् राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। उस भाग में विनियम 31 सचिव को अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार देता है। अंतिम विनियम, अर्थात् विनियम 33, जो सामान्य प्रकृति का है, यह कहता है कि "यदि इन विनियमों की व्याख्या से संबंधित कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, तो उस पर राज्यपाल

का निर्णय अंतिम होगा।"

उपर्युक्त संविधान एवं विनियमों के प्रावधानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बीपीएससी एक स्वतंत्र संस्था है, जिसे बिहार राज्य की सिविल सेवाओं की सत्यनिष्ठा, पवित्रता और दक्षता बनाए रखने के उद्देश्य से अस्तित्व में लाया गया है। बीपीएससी में नियुक्त किए जाने वाले अध्यक्ष और सदस्य संवैधानिक पदाधिकारी होते हैं। ये प्रावधान स्पष्ट रूप से यह संकेत करते हैं कि आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों द्वारा एक निकाय के रूप में किन-किन कार्यों का निर्वहन किया जाना है तथा आयोग के अध्यक्ष द्वारा कौन-से प्रशासनिक कार्य संपादित किए जाने हैं। साथ ही, ये प्रावधान यह भी दर्शाते हैं कि सदस्यों की सेवा शर्तें कौन-सी हैं, जिन्हें संरक्षण प्राप्त है। इस प्रकार, संविधान और विनियमों के प्रावधान मिलकर उस ढांचे या सीमा के भीतर बीपीएससी के लिए एक पूर्ण एवं व्यापक संहिता का निर्माण करते हैं, जिसके अंतर्गत उसके पदाधिकारी कार्य करते हैं।

अब हम डॉ. ठाकुर द्वारा अपनी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) में मांगी गई राहतों पर विचार करेंगे।

प्रार्थना अनुच्छेद (क) में सुविधाओं की पुनःप्राप्ति के रूप में जो दावा किया गया है, वह मुख्यतः दो आधारों पर आधारित है : (i) याचिकाकर्ता (डॉ. ठाकुर), जो बीपीएससी का सदस्य है, प्रशासनिक भवन में एक सुसज्जित पृथक कक्ष पाने का अधिकारी है, जबकि बीपीएससी का अध्यक्ष, जो स्वयं भी अनुच्छेद 316 और 318 के उपबंधों तथा विनियमों के विनियम 2(घ) के अर्थ में बीपीएससी का सदस्य है, प्रशासनिक भवन में एक सुसज्जित पृथक कक्ष रखता है, क्योंकि उसे ऐसा पृथक कक्ष प्रदान किया गया था; (ii) जब संविधान के अनुच्छेद 318 के उपबंध ने लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा शर्तों को यह कहते हुए संरक्षण प्रदान किया है कि नियुक्ति के बाद किसी सदस्य की सेवा शर्तों को उसके प्रतिकूल रूप से परिवर्तित नहीं किया जाएगा, तो याचिकाकर्ता को नियुक्ति के बाद प्रदान की गई सुविधाएँ उससे वंचित नहीं की जा सकती थीं।

जहाँ तक प्रार्थना अनुच्छेद (ख) और (ग) में याचिकाकर्ता द्वारा अध्यक्ष के विरुद्ध कार्रवाई हेतु भारत के राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देने से संबंधित राहत का प्रश्न है, वह अध्यक्ष पर आरोपित कुछ कृत्यों और चूकों के आरोपों पर आधारित है, जबकि बीपीएससी ने परीक्षाओं के संचालन आदि से संबंधित अपने कार्यों का निर्वहन किया।

इसके बाद, प्रार्थना अनुच्छेद (घ) में न्यायालय द्वारा दंडादेश पारित किए जाने से संबंधित राहत का प्रश्न आता है, जो अध्यक्ष द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश में निहित इस निर्देश के कथित उल्लंघन और अवहेलना पर आधारित है कि डॉ. ठाकुर को वे सभी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए थीं, जो उच्च न्यायालय द्वारा सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 446/92 को खारिज करते समय की गई टिप्पणियों में उल्लिखित थीं।

श्री आर. के. गर्ग, वरिष्ठ अधिवक्ता, जो डॉ. ठाकुर—याचिकाकर्ता—की ओर से उपस्थित हुए, ने स्पष्ट रूप से कहा कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में प्रार्थना अनुच्छेद (ख) और (ग) में मांगी गई राहतों के समर्थन में वे कोई भी निवेदन नहीं कर रहे हैं; अतः हमें उन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। श्री गर्ग ने, हमारे विचार में ठीक ही, प्रार्थना अनुच्छेद (ख) और (ग) में मांगी गई राहतों के समर्थन में कोई निवेदन नहीं किया, क्योंकि जिन आरोपों पर वे राहतें आधारित थीं, वे बीपीएससी के उन कार्यों से संबंधित थे, जिन्हें बीपीएससी उसके विद्यमान सदस्य द्वारा निर्वहित नहीं किया जा सकता था। जो भी हो, हमारे विचार में, लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य, जब वह उसका सदस्य था, लोक सेवा आयोग द्वारा एक निकाय के रूप में किए गए कार्यों या निर्वहित कर्तव्यों की वैधता या शुद्धता पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि ऐसा सदस्य उस कार्य या कर्तव्य का, जिसे लोक सेवा आयोग को एक निकाय या संस्था के रूप में करना या निर्वह करना आवश्यक है, पक्षकार माना जाना चाहिए, भले ही वह असहमत सदस्य रहा हो या अल्पमत में रहा हो या ऐसा सदस्य रहा हो जिसने ऐसे कार्य के निष्पादन या कर्तव्य के निर्वहन में भाग न लिया हो। संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में निहित विवेकाधीन उपचार का उपयोग, सुव्यवस्थित प्रक्रियाओं के अनुसार लोक सेवा आयोग द्वारा एक निकाय या संस्था के रूप में किए गए कार्यों या निर्वहित कर्तव्यों की शुद्धता या वैधता पर प्रश्न उठाने के लिए, लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को अनुमति देने हेतु नहीं किया जा सकता।

पुनः, श्री आर. के. गर्ग ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में प्रार्थना अनुच्छेद (घ) के संबंध में भी कोई निवेदन नहीं किया। हमारे विचार में, ठीक ही, क्योंकि डॉ. ठाकुर द्वारा अध्यक्ष और बीपीएससी के सचिव के विरुद्ध किए गए वही आरोपों के संदर्भ में दायर अवमानना याचिका पहले ही खारिज की जा चुकी थी, अतः वही राहत पुनः प्राप्त करने का प्रश्न न तो उत्पन्न होता है और न ही उसे पुनः उठाने की अनुमति दी जा सकती है।

अतः, अब हमारे विचारार्थ केवल वही राहत शेष रहती है, जो डॉ. ठाकुर द्वारा विनिर्दिष्ट

आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) में प्रार्थना अनुच्छेद (क) के अंतर्गत मांगी गई है।

डॉ. ठाकुर द्वारा, जिसकी पुनःप्राप्ति के लिए उन्होंने अपनी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में राहत मांगी है, वे सुविधाएँ वे थीं, जिनका उन्होंने दावा किया कि उन्होंने 4 मार्च, 1991 को नियुक्ति के बाद से लेकर 1 अक्टूबर, 1991 तक अल्प अवधि के लिए उपभोग किया था। वे सुविधाएँ, संक्षेप में, निम्नलिखित थीं : प्रथम, प्रशासनिक भवन में स्थित सुसज्जित कार्यालय-कक्ष, जिसमें टेलीफोन, कूलर, एक अंग्रेज़ी टाइपराइटर, दो स्टील की अलमारियाँ, पी.ए. के लिए एक एंटी-रूम तथा कक्ष से संलग्न शौचालय था; द्वितीय, रीडर, श्री आर. पी. वर्मा की सेवाएँ, जिन्हें याचिकाकर्ता के लाभ हेतु नियुक्त किया गया था; और तृतीय, विश्वासपात्र पी.ए. के रूप में श्री एस. एम. दास तथा अपनी पसंद के अर्दली, श्री अभिनन्दन प्रसाद बादल की सेवाएँ।

याचिकाकर्ता डॉ. ठाकुर की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. गर्ग का तर्क, उनके अपने शब्दों में, यह था कि— "अध्यक्ष, आखिरकार, सदस्यों में प्रथम है, क्योंकि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 316, जो अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति और उनके पदावधि से संबंधित है, तथा अनुच्छेद 317, जो अध्यक्ष और सदस्यों को हटाने तथा निलम्बित करने से संबंधित है, अध्यक्ष और बिहार लोक सेवा आयोग के अन्य सदस्यों के बीच कोई भेद नहीं करता। यदि ऐसा है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि किसी सदस्य को वे सुविधाएँ प्रदान न की जाएँ जो अध्यक्ष को उपलब्ध थीं।" श्री गर्ग की दूसरी दलील यह थी कि संविधान के अनुच्छेद 318 के अंतर्गत, जो राष्ट्रपति को लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवा शर्तों को विनियमित करने हेतु नियम बनाने में सक्षम बनाता है, नियुक्ति के पश्चात् सदस्य की सेवा शर्तों में उसके अहित में परिवर्तन नहीं किया जा सकता; अतः नियुक्ति के बाद सदस्य (डॉ. ठाकुर) को प्रदान की गई सुविधाएँ बी.पी.एस.सी. के अध्यक्ष द्वारा वापस नहीं ली जानी चाहिए थीं। श्री गर्ग की ये दोनों दलीलें, हमारे विचार में, महत्व रखती हैं। यह सत्य है कि संविधान के अनुच्छेद 316 में लोक सेवा आयोग के सदस्य के पद पर नियुक्ति और पदावधि से संबंधित प्रावधान हैं तथा अनुच्छेद 317 में लोक सेवा आयोग के सदस्य को हटाने और निलंबित करने से संबंधित प्रावधान हैं, और इन प्रावधानों में लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य को वहाँ वर्णित विषयों के संदर्भ में समान स्तर पर रखा गया है। यह भी कहा जा सकता है कि कार्यों के निष्पादन तथा कर्तव्यों के निर्वहन के विषय में, जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 320 या 321 के अंतर्गत लोक सेवा आयोग द्वारा निष्पादित या निर्वाहित किया जाना आवश्यक है, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य समान

भागीदार हैं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और उसके प्रत्येक सदस्य के पद के बीच कोई अंतर नहीं है। अध्यक्ष को लोक सेवा आयोग का प्रमुख सदस्य कहा जा सकता है और वह अपने-अपने पद के अनुसार प्रत्येक सदस्य से अलग है। जब संविधान का अनुच्छेद 316(1) विशेष रूप से अध्यक्ष के पद को मान्यता देता है और यह विशेष रूप से अध्यक्ष के रूप में उसके द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों का उल्लेख करता है, तो लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और लोक सेवा आयोग के सदस्य को एक ही समान स्तर पर नहीं रखा जा सकता, जैसा कि तर्क दिया गया है। अध्यक्ष को किसी सदस्य के समान नहीं माना जा सकता—यह बात केवल विनियम 4 से ही नहीं, जो अध्यक्ष के लिए अधिक वेतन और सदस्य के लिए कम वेतन का प्रावधान करता है, बल्कि विनियम 8 से भी स्पष्ट होती है, जो उस वरिष्ठ सदस्य को विशेष भत्ता दिए जाने का प्रावधान करता है जो अध्यक्ष के वर्तमान प्रशासनिक कर्तव्यों का भार संभालता है। इसके अतिरिक्त, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य को प्रत्येक विषय में समान स्थिति में खड़ा व्यक्ति नहीं माना जा सकता, क्योंकि संविधान कुछ प्रयोजनों के लिए अध्यक्ष और सदस्यों के साथ समान व्यवहार करता है, जबकि कई अन्य अनुच्छेदों में "अध्यक्ष और सदस्य" तथा "अध्यक्ष के अतिरिक्त" जैसे शब्दों का प्रयोग करके उन्हें भिन्न प्रयोजनों के लिए अलग-अलग रूप से समझा गया है। अतः संविधान के प्रावधानों और विनियमों की उस व्यवस्था के अंतर्गत, जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को प्रशासनिक कर्तव्यों के निर्वहन में अध्यक्ष के रूप में विशिष्ट भूमिका प्राप्त है, जबकि कोई सदस्य तब तक इस संबंध में कोई भूमिका नहीं निभा सकता जब तक कि विशेष रूप से ऐसा करने की आवश्यकता न हो। जैसे संविधान के अंतर्गत उच्च न्यायालय के प्रशासन से संबंधित कर्तव्यों का भंडार मुख्य न्यायाधीश को सौंपा गया है, उसी प्रकार संविधान के अंतर्गत लोक सेवा आयोग के प्रशासन से संबंधित कर्तव्यों का भंडार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को सौंपा गया है। लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को इस प्रकार प्रशासनिक कर्तव्यों के निर्वहन का दायित्व सौंपा जाना स्पष्टतः इस कारण है कि ऐसे उच्च संवैधानिक पदाधिकारी पर यह भरोसा किया जा सके कि वह इन कर्तव्यों का निर्वहन न्यायपूर्ण और निष्पक्ष ढंग से करेगा। जब संविधान के अनुच्छेद 318 के अंतर्गत लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवा शर्तों के संबंध में विनियम बनाए जाते हैं, तो यह सही है कि ऐसे विनियम सदस्य की नियुक्ति के पश्चात उसकी सेवा शर्तों को उसके प्रतिकूल परिवर्तित नहीं कर सकते। अतः जहाँ तक लोक सेवा आयोग के सदस्य का संबंध है, यह स्पष्ट है कि यदि उसकी सेवा की किसी भी शर्त को उसकी नियुक्ति के पश्चात विनियमों द्वारा उसके प्रतिकूल बदला जाता है, तो वह निःसंदेह

उससे शिकायत का कारण उत्पन्न करेगा और इस संबंध में न्यायालय से राहत प्राप्त कर सकता है। किंतु, जहाँ तक आयोग के प्रशासन का कार्य करते समय अध्यक्ष द्वारा सदस्य को सुविधाओं या सुख-सुविधाओं के रूप में कुछ प्रदान किए जाने का प्रश्न है, वहाँ ऐसी किसी सुविधा या सुख-सुविधा को वापस लेना लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा शर्तों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं माना जा सकता। आयोग के प्रशासन के निर्वहन में किसी सदस्य को दी गई सुविधाएँ या उपसुविधाएँ, किसी भी स्थिति में, लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा शर्तों में परिवर्तन के समकक्ष नहीं हो सकतीं, क्योंकि संविधान का अनुच्छेद 318 ऐसी किसी परिकल्पना की अनुमति नहीं देता। अतः संविधान के अनुच्छेद 318 पर आधारित याचिकाकर्ता की ओर से दी गई दलील निराधार है। परिणामस्वरूप यह स्पष्ट है कि बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को प्राप्त सुविधाओं और सुख-सुविधाओं के समान सुविधाएँ आयोग के सदस्य को दिए जाने का याचिकाकर्ता का दावा स्वीकार्य नहीं है और अस्वीकृत किए जाने योग्य है।

यद्यपि हमने याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा, याचिकाकर्ता को संवैधानिक अथवा विधिक अधिकार के रूप में दावा की गई सुविधाओं की पुनःप्राप्ति संबंधी दलीलों को अस्वीकार कर दिया है, तथापि याचिकाकर्ता को ऐसा अनुभव करने का कोई कारण नहीं होना चाहिए, जैसा कि श्री आर. के. गर्ग द्वारा तर्क दिया गया, कि लोक सेवा आयोग के सदस्य होने के कारण आयोग द्वारा पूर्व में अध्यक्ष के माध्यम से प्रदान की गई सुविधाओं की वापसी से उसका अपमान हुआ है, क्योंकि बिहार लोक सेवा आयोग की ओर से हमें यह बताया गया कि पूर्व में उपलब्ध कराई गई लगभग सभी सुविधाएँ पुनः बहाल कर दी गई हैं और इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है। तथापि, श्री आर. के. गर्ग का यह आग्रह कि याचिकाकर्ता के लिए शौचालय सुविधा सहित एक पृथक कक्ष उपलब्ध कराया जाना चाहिए, इस आधार पर कि उनके अनुसार ऐसी सुविधा न केवल एक पूर्णतः दृष्टिहीन व्यक्ति के रूप में बल्कि एक सदस्य के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य करने हेतु भी आवश्यक थी, स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि बिहार लोक सेवा आयोग की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि उसके प्रशासनिक भवन में आयोग के कार्य संचालन के लिए मुश्किल से तीन कक्ष उपलब्ध हैं और उनमें से किसी एक कक्ष को याचिकाकर्ता के विशिष्ट उपयोग हेतु पृथक नहीं किया जा सकता। इस विषय में हम कोई निश्चित कथन नहीं कर सकते, क्योंकि कार्यालय कार्य के लिए आयोग के सदस्यों को प्रदान की जाने वाली आवासीय सुविधाएँ उसके कार्य संचालन के लिए उपलब्ध स्थान पर अनिवार्य रूप से निर्भर करती हैं। इतना

अवश्य कहा जा सकता है कि लोक सेवा आयोग जैसी संस्था को राज्य सरकार द्वारा अपने सदस्यों के लिए आवश्यक आवास अथवा अन्य आवश्यक सुविधाओं और सुख-सुविधाओं से आवश्यकता की स्थिति में वंचित नहीं किया जाना चाहिए। जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा माँगे गए प्रतिपूरक भत्ते का प्रश्न है, हम यह स्पष्ट करते हैं कि याचिकाकर्ता के लिए विनियमों के विनियम 17 के अंतर्गत उसकी स्वीकृति हेतु आवेदन करना खुला है, जिसे यदि किया गया, तो उस पर गुण-दोष के आधार पर विचार कर निर्णय लिया जाएगा।

उपर्युक्त कारणों से, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) में प्रार्थना 'ए' में मांगी गई किसी भी राहत प्रदान करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

अब हम अंतरिम आदेशों के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिकाओं पर आते हैं, जो विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में पारित किए गए थे। विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) में पारित सभी अंतरिम आदेश माननीय मुख्य न्यायाधीश बी. सी. बसाक तथा माननीय न्यायमूर्ति सी. एस. एन. मिश्र द्वारा, जो एक खंडपीठ के सदस्य थे, पारित किए गए थे। जब हम इन अंतरिम आदेशों को देखते हैं, तो उनमें से कोई भी उस संबंध में किए गए लिखित आवेदन के आधार पर पारित नहीं किया गया प्रतीत होता है। हम पहले ही यह इंगित कर चुके हैं कि पहला अंतरिम आदेश, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, दिनांक 27.8.1992 का है, जिसके द्वारा बिहार लोक सेवा आयोग को यह निर्देश दिया गया कि वह 29.8.1992 को एक बैठक आयोजित करे, ताकि डॉ. ठाकुर द्वारा बिहार लोक सेवा आयोग के विरुद्ध दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित वाद) के माध्यम से आरंभ की गई वाद-प्रक्रिया को आयोग की ओर से कैसे संचालित किया जाए, इस पर निर्णय लिया जा सके। उक्त अंतरिम आदेश, जहाँ तक उसका तात्पर्य है, यहाँ तक स्वीकार्य हो सकता था कि उसमें सुविधा से संबंधित किसी पहलू को नहीं छुआ गया था।

> ".....आयोग की एक बैठक 29.8.1992 को आयोग की ओर से वाद-प्रक्रिया के संचालन के संबंध में निर्णय लेने के उद्देश्य से आयोजित की जाए। हम यह स्पष्ट करते हैं कि ऐसे निर्णय डॉ. ठाकुर द्वारा दायर याचिका के संबंध में लिए जाने हैं। श्री ठाकुर उक्त बैठक में इस एजेंडा के संबंध में भाग नहीं लेंगे।"

हम वास्तव में यह समझने में असमर्थ हैं कि न्यायालय द्वारा ऐसा आदेश क्यों पारित किया गया, जिसमें बिहार लोक सेवा आयोग को यह तय करने के लिए बैठक आयोजित करने का निर्देश दिया गया कि वह डॉ. ठाकुर द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका

(स्थानांतरित वाद) का प्रतिवाद करे या नहीं, क्योंकि यदि उसका प्रतिवाद नहीं किया गया होता या यदि प्रतिवाद अस्थिर होता, तो न्यायालय स्वयं ही विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का निस्तारण गुण-दोष के आधार पर कर सकता था। दूसरा अंतरिम आदेश, दिनांक 1.9.1992 का, जिसके द्वारा न्यायालय ने डॉ. ठाकुर को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में बिहार लोक सेवा आयोग के सभी सदस्यों को, अध्यक्ष सहित, पक्षकार-उत्तरदाता के रूप में सम्मिलित करने की अनुमति दी, ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस कारण पारित किया गया कि न्यायालय में बिहार लोक सेवा आयोग की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ था और किसी ने वह निर्णय प्रस्तुत नहीं किया था जिसे आयोग द्वारा लिया जाना अपेक्षित था। इसके बाद तीसरा अंतरिम आदेश, दिनांक 7.9.1992 का आता है, जिसमें यह कहा गया कि यह मामला अगले दिन प्रस्तुत होगा, जब अध्यक्ष को इस विषय से संबंधित अभिलेखों के साथ न्यायालय में उपस्थित होना होगा, और यदि वह अभिलेखों के साथ उपस्थित नहीं होते हैं, तो उनकी गिरफ्तारी के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया जाएगा।इसके पश्चात न्यायालय द्वारा पारित चौथा अंतरिम आदेश यह कहता है कि डॉ. ठाकुर द्वारा दायर याचिका के संबंध में आयोग द्वारा निर्णय लिया जाना था, परंतु अध्यक्ष और डॉ. ठाकुर को उस निर्णय पर मतदान करने की अनुमति दिए बिना। इस अंतरिम आदेश को, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उसके वास्तविक आशय को समझने के लिए पूर्ण रूप से पुनरुत्पादित किया गया है।

> ".....क्योंकि यह प्रश्न उठाए जा रहे हैं कि डॉ. ठाकुर के संबंध में अध्यक्ष द्वारा लिया गया निर्णय आयोग का निर्णय है या नहीं, और क्योंकि यही इन आदेशों को पारित करने का समूचा उद्देश्य है। तदनुसार, हम निर्देश देते हैं कि बैठक आयोजित की जाए, जैसा कि हमारे द्वारा निर्देशित किया गया है, ताकि याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए विभिन्न आरोपों के संबंध में आयोग के विभिन्न सदस्यों के विचारों को जाना जा सके और अध्यक्ष द्वारा उनका उत्तर प्राप्त किया जा सके। हम आयोग को निर्देश देते हैं कि वह इस विषय में सर्वसम्मति से नहीं, बल्कि बहुमत से निर्णय ले। आयोग के प्रत्येक सदस्य के लिए यह खुला होगा कि वह इस विषय पर विचार करे और अपना मत अभिलेख पर दर्ज करे। आयोग की चर्चाओं में डॉ. ठाकुर और अध्यक्ष भाग ले सकते हैं। आयोग के किसी भी सदस्य के अनुरोध पर, डॉ. ठाकुर और अध्यक्ष दोनों को अन्य सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण या स्पष्टता प्रस्तुत करने के लिए बुलाया जा सकता है। तथापि, निर्णय आयोग की बैठक में ही लिया जाएगा, परंतु याचिकाकर्ता अथवा अध्यक्ष को मतदान का अधिकार नहीं होगा और न ही वे उस समय उपस्थित होंगे

जब मत डाले जा रहे हों।"

यह अंतरिम आदेश यह भी कहता है कि आयोग के सदस्यों में सबसे वरिष्ठ सदस्य बैठक की अध्यक्षता करेगा, किंतु उसे भी मतदान करने की अनुमति नहीं होगी। इसके बाद दिनांक 16.9.1992 को पारित अंतरिम आदेशों में पाँचवाँ और अंतिम आदेश आता है। उस अंतरिम आदेश के द्वारा पटना उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति एल. पी. एन. सहदेव को बिहार लोक सेवा आयोग की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए नियुक्त किया गया, ताकि यह निर्णय लिया जा सके कि अध्यक्ष द्वारा दायर शपथपत्र आयोग का शपथपत्र माना जा सकता है या नहीं। यह अंतरिम आदेश यहीं नहीं रुकता, बल्कि आगे बढ़ते हुए यह निर्देश भी देता है कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के निस्तारण तक बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को उनके वेतन और भत्तों का आहरण करने की अनुमति दी जाए।

ये वही अंतरिम आदेश हैं जिन्हें विशेष अनुमति याचिकाओं में चुनौती दी गई है। हम वास्तव में यह समझने में असमर्थ हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के विनिर्दिष्ट आदेश अधिकार क्षेत्र का उपयोग किस प्रकार से ऐसे अंतरिम आदेश पारित करने के लिए किया जा सकता था, जो बिहार लोक सेवा आयोग के सामान्य कार्य संचालन और संवैधानिक पदाधिकारियों के कार्यों में हस्तक्षेप करते थे, भले ही उच्च न्यायालय बिहार लोक सेवा आयोग के विचार जानना चाहता हो, उस विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के संबंध में जो डॉ. ठाकुर द्वारा आयोग तथा उसके अध्यक्ष के कार्यकरण के विरुद्ध दायर की गई थी। हम वास्तव में यह समझने में असमर्थ हैं कि ऐसे अंतरिम आदेशों को इस रूप में कैसे माना जा सकता है कि वे अंतिम राहत के सहायक के रूप में पारित किए गए थे, यदि ऐसी कोई राहत विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में दी जानी अपेक्षित थी, अथवा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के निस्तारण तक यथास्थिति बनाए रखने के लिए आवश्यक थे। जब इन अंतरिम आदेशों के स्वरूप को देखा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने बिहार लोक सेवा आयोग के कार्यों के निर्वहन की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर लेने का प्रयास किया, जिसके लिए उसने आयोग की बैठक आयोजित कराने हेतु अपना ही अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय के लिए यह खुला था कि वह बिहार लोक सेवा आयोग की ओर से अध्यक्ष द्वारा दायर शपथपत्र को यह कहते हुए अस्वीकार कर दे कि उसे आयोग की राय के रूप में नहीं माना जा सकता। किंतु ऐसे मामले में, जब आयोग के निकाय के रूप में कोई निर्णय नहीं लिया गया था, उच्च न्यायालय भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने कथित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए ऐसे अंतरिम आदेश पारित करने में सक्षम नहीं था, जिनसे बिहार लोक सेवा आयोग, जो एक संवैधानिक संस्था है, का कार्य संचालन बाधित होता और जो उसे आम जनता की दृष्टि में उपहास का विषय बना देते तथा उसके संवैधानिक पदाधिकारियों को उपहास के योग्य बना देते। यह सत्य है कि संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने और निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का अधिकार देता है, जिनमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा, परमादेश अथवा इनमें से कोई भी शामिल हो सकता है, जो संविधान के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए हो सकता है; किंतु ऐसे निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का यह विवेकाधीन अधिकार, जो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है, सुव्यवस्थित न्यायिक मानकों के आधार पर प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे अंतरिम आदेश पारित करने के लिए इस न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए था, जो किसी भी प्रकार से विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में मांगी गई मुख्य राहत प्रदान करने में न्यायालय की सहायता नहीं कर सकते थे। अतः ऐसे अंतरिम आदेश, जो न तो यथास्थिति बनाए रखने के लिए पारित किए गए थे और न ही इस उद्देश्य से कि मांगी गई मुख्य राहत निष्फल न हो, बल्कि इसके विपरीत पूर्णतः अस्थिर और अव्यवहारिक बन गए, संधारणीय नहीं हो सकते। न्यूनतम शब्दों में कहा जाए तो ऐसे अंतरिम आदेश उच्च न्यायालय द्वारा यह महसूस किए बिना पारित कर दिए गए कि उनका प्रभाव बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और उसके सदस्यों को आम जनता की दृष्टि में उपहास का विषय बनाने और आयोग जैसी एक संवैधानिक संस्था को उपहास का पात्र बनाने जैसा था। उपरोक्त कारणों से, एस.एल.पी. में चुनौती दिए गए अंतरिम आदेशों को कायम नहीं रखा जा सकता है और उन्हें अपास्त किया जाना चाहिए।

परिणामस्वरूप, हम एस.एल.पी. में अनुमति प्रदान करते हैं, अपीलों को स्वीकार करते हैं, अपील किए गए अंतरिम आदेशों को अपास्त करते हैं और विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (स्थानांतरित मामला) को खारिज करते हैं। हालांकि, इन अपीलों और स्थानांतरित मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

आर. पी. अपील की अनुमति दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।